[2018] 2 एस. सी. आर. 775

उपेंद्र सिंह

बनाम्

बिहार राज्य और अन्य

(सिविल अपील संख्या 2356/2018)

23 फरवरी,2018

[न्यायमूर्ति, ए. के. सिकरी और न्यायमूर्ति, अशोक भूषण]

सेवा विधि-नियमितीकरण-जब वैध नहीं होता है-अपीलार्थी को प्रतिवादी सं.-8 एक निजी कॉलेज द्वारा गैर-शिक्षण कर्मचारियों में ग्रेड III में नियुक्त किया गया था। उक्त प्रतिवादी सं.-8, निजी कॉलेज कोराज्य सरकार द्वारा अधिग्रहित किया गया जो बिहार विश्वविद्यालय का एक 'अंगीभूत महाविद्यालय' बन गया, जिसके बाद हालांकि अपीलार्थी को समंजित कर लिया गया था, लेकिन कोई वेतन नहीं दिया गया था-इसके खिलाफ रिट याचिका उच्च न्यायालय द्वारा फिर से खारिज कर दी गई थी-अपीलार्थी की याचिका कि स्वयं राज्य सरकार के एक प्रस्ताव द्वारा, 1991 में, सेवाओं को नियमित करने का निर्णय लिया गया था, लेकिन इसका लाभ अपीलार्थी को तब भी नहीं दिया गया था जब वह उक्त प्रस्ताव में निहित सभी शर्तों को पूरा करता है-अभिनिर्धारित:आदेश दिनांक 13 अगस्त 2003 के आलोक में नियमितीकरण से इनकार करते हुए विशेष रूप से कहा कि अपीलार्थी की प्रारंभिक नियुक्ति विधि - सम्मत नहीं थी - विश्वविद्यालय या सरकार ने उन कॉलेजों के कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित करने पर सहमति व्यक्त की थी, जो अंगीभूत महाविद्यालय बन गए थे, केवल इस शर्त पर कि उनकी प्रारंभिक नियुक्ति उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद हुई थी और वह भी स्वीकृत पद के विरुद्ध-कोई हस्तक्षेप नहीं करने के लिए आक्षेपित आदेश।

याचिका खारिज करते हुए कोर्ट ने अभिनिर्धारित किया:

1.1 आक्षेपित निर्णय में कोई दोष नहीं है और इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में, अपीलार्थी द्वारा जिस पूरे आधार पर मामला स्थापित किया गया है, वह गलत प्रतीत होता है। अपीलार्थी सहित अन्य व्यक्तियों के मामलों पर विश्वविद्यालय द्वारा विधिवत विचार किया गया था, जिसके आधार पर 13 अगस्त, 2003 का आदेश, नियमित करने से अस्वीकृत करते हुए पारित किया गया था। इस आदेश में विशेष रूप से कहा गया था कि अपीलार्थी की प्रारंभिक नियुक्ति विधि - सम्मत नहीं थी। यह नियुक्ति बिना विज्ञापन के की गई थी और चयन समिति द्वारा पैनल की कोई सिफारिश नहीं की गई थी। इतना ही नहीं, नियुक्तियां सक्षम प्राधिकारी द्वारा नहीं की गई थीं। विश्वविद्यालय, या उस मामले के लिए, सरकार ने उन कॉलेजों के कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित करने पर सहमति व्यक्त की थी, जो अंगीभूत महाविद्यालय बन गए थे, केवल इस शर्त पर कि उनकी प्रारंभिक नियुक्ति उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद हुई थी और वह भी स्वीकृत पदों के विरुद्ध। [कंडिका 7] [780-घ-च]

1.2 उमादेवी मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले द्वारा नियमितीकरण से संबंधित कानून अधिकृत रूप से निर्धारित किया गया। उस मामले में निर्धारित कानून के लागू होने पर, यह स्पष्ट है कि कानून के विपरीत नियुक्त दैनिक मजदूर को नियमित करने का सवाल ही नहीं उठता है। निर्णय के इस आधार को अपीलार्थी के वकील द्वारा भी विवादित नहीं किया जा सका। यही कारण है कि उन्होंने निवेदन करना जारी रखा कि अपीलार्थी की नियुक्ति उचित प्रक्रिया का पालन करने और कानून के अनुसार की गई थी। हालांकि, यह अभिलेख से साबित नहीं होता है।प्रासंगिक रूप से, आदेश दिनांक १३ अगस्त, २००३, जिसके द्वारा अपीलार्थी को उपरोक्त आधार पर नियमितीकरण से इंकार कर दिया गया था, उस समय अपीलार्थी द्वारा भी विरोध नहीं किया गया था। उमा देवी के मामले में, अदालत ने उन लोगों के लिए एक छोटी सी खिड़की खोल दी जो दस साल से अधिक समय से तदर्थ/दैनिक मजदूरी के आधार पर काम कर रहे थे, ताकि उन्हें एक बार के उपाय के रूप में नियमित किया जा सके। हालाँकि, यह भी शर्त के आधीन था कि उन्हें विधिवत स्वीकृत पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए था। इसके अलावा, उनकी दस साल की अवधि की गणना करते समय, उन मामलों को बाहर रखा जाना था जहां ऐसे व्यक्ति अदालतों या न्यायाधिकरण के आदेशों

की आड़ में काम करते रहे। उच्च न्यायालय ने आक्षेपित फैसले में इन बारीकियों पर चर्चा की है और उमा देवी के फैसले का भी उल्लेख किया है और कहा है कि उस मामले में सुझाए गए एकमुश्त उपाय का लाभ अपीलार्थी तक विस्तारित नहीं किया जा सकता है। [कंडिका 8] [780-जी-एच; 781-ए-सी]

सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमादेवी और ओआरएस (2006) 4 एससीसी 1:[2006] 3 एस. सी. आर. 953-इसके बाद

वाद विधि का संदर्भ

| | | |
|---|---|---|
| [2006] 3 एससीआर 953 | अनुसरण किया | पैरा 8 |

सिविल अपीलीय न्याय निर्णयः सिविल अपील संख्या 2356/2018

2013 के एल. पी. ए. सं. 447 में पटना में उच्च क्षेत्राधिकार के न्यायिक आदेश दिनांक 25.07.2013 से

मीरा माथुर, अपीलार्थी की ओर से अधिवक्ता।

सुभ्रो सान्याल, अभिनव मुखर्जी, सुश्री बीनू शर्मा, सुश्री पूर्णिमा कृष्णा, सिद्धार्थ गर्ग, अजय कुमार तलेसरा, अतुल झा, संदीप कुमार झा, अधिवक्तागण।उत्तरदाताओं के लिए अधिवक्ता।

न्यायालय का निर्णय ए. के. सिकरी, न्यायमूर्ति

निर्णय

इसमें अपीलकर्ता ने अपीलकर्ता द्वारा दायर लेटर्स पेटेंट अपील (एलपीए) को खारिज करने के पटना उच्च न्यायालय द्वारा 25 जुलाई, 2013 को पारित फैसले को चुनौती दी है।वास्तव में, उक्त सामान्य निर्णय द्वारा, दो एलपीए तय किए गए हैं। एक एलपीए तीन व्यक्तियों द्वारा और दूसरा आठ व्यक्तियों द्वारा दायर किया गया था। ये सभी

ग्यारह व्यक्ति, जिन्हें एक के. डी. एस. कॉलेज (इन कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी संख्या 8) द्वारा नियोजित किया गया था, थाना गोगरी, जिला खगड़िया, बिहार, के क्षेत्राधिकार में स्थित है। उनकी सेवाओं को नियमित करना और इस तरह के नियमितीकरण के आधार पर वेतन का भुगतान करना चाहता था। उनकी रिट याचिका विद्वत एकल न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दी गई थी और इंट्रा-कोर्ट अपील का भी वही हश्र हुआ है। हालांकि, ऐसा प्रतीत होता है कि ग्यारह व्यक्तियों में से, जो पूर्वोक्त दो एलपीए में अपीलार्थी थे, केवल इसमें अपीलार्थी ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है और उसमें परिणाम से असंतुष्ट महसूस किया है।

2. अपीलार्थी द्वारा स्थापित मुख्य मामला यह है कि, निःसंदेह, प्रत्यर्थी नं. ८ एक निजी कॉलेज था जब अपीलार्थी संलग्न था, हालांकि, इसे अंततः राज्य सरकार द्वारा ले लिया गया और बिहार विश्वविद्यालय से संबद्ध कर दिया गया। यह कहा गया है कि अपीलार्थी द्वारा प्रदान की गई लंबी सेवा को ध्यान में रखते हुए, ऐसे व्यक्तियों को नियमित करने के लिए विश्वविद्यालय के अधिकारियों के निर्णय के साथ, वह भी इसके हकदार थे। हालांकि, इससे इनकार किया गया है और उन्हें पिछले एक दशक से उनका नियमित वेतन नहीं दिया गया है। यह दावा निम्नलिखित प्रकथनों पर आधारित हैः

3. प्रतिवादी संख्या 8 के शासी निकाय ने एक विज्ञापन के माध्यम से भर्ती की उचित प्रक्रिया का पालन करने और उसके बाद साक्षात्कार पर चयन करने के बाद शिक्षण और गैर-शिक्षण कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए एक चयन समिति का गठन किया। 24 जनवरी, 1978 से गैर-शिक्षण श्रेणी में ग्रेड III में अपीलकर्ता की नियुक्ति की गई। वर्ष 1980 में बिहार सरकार द्वारा बिहार विश्वविद्यालय सहित कुछ विश्वविद्यालयों को निर्णय लिया गया था कि इन विश्वविद्यालयों से संबद्ध कॉलेजों को विश्वविद्यालय के 'संघटक कॉलेजों' के रूप में परिवर्तित किया जाए, जिसके आधार पर प्रतिवादी संख्या 8 भी बिहार विश्वविद्यालय का संघटक कॉलेज बन गया। इस निर्णय को प्रतिवादी संख्या ८ द्वारा भी लागू किया गया था और १६ जून, १९८१, से, प्रतिवादी संख्या ८ ने अंगीभूत महाविद्यालय का दर्जा प्राप्त कर लिया.इसके बाद, प्रत्यर्थी नं. ८ ने अपीलार्थी सहित सभी कर्मचारियों को समाहित कर लिया, और उसके बाद अपीलार्थी प्रत्यर्थी नं. ८ की सेवा में

रहा। हालांकि, विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने अपीलकर्ता और ग्रेड III और ग्रेड IV के कुछ अन्य कर्मचारियों को वेतन का भुगतान नहीं किया, हालांकि वे सेवा में बने रहे, कॉलेज कर्मचारी संघ द्वारा इस संबंध में अभ्यावेदन दिए गए थे। हालांकि, शुरू में आश्वासन दिए गए थे, लेकिन वे पूरे नहीं किए गए, जिसके कारण कर्मचारी संघ ने आंदोलन शुरू किया और उसे जारी रखा। अंततः, बिहार राज्य और बिहार उच्च शिक्षा विभाग ने 26 अप्रैल, 1989 को बिहार राज्य विश्वविद्यालय और कॉलेज कर्मचारी संघ के साथ कर्मचारियों को स्टाफिंग पैटर्न के आधार पर अपीलार्थी सहित समायोजित करने के लिए सहमति व्यक्त की। उस निर्णय के आधार पर, प्रत्यर्थी संख्या 8 ने अपने कर्मचारियों के अभिलेखों की जांच की और अपीलकर्ता सहित गैर-शिक्षण कर्मचारियों के नामों की सिफारिश की, सरकार को अपने 22 दिसंबर, 1989 के पत्र के माध्यम से नामों की सिफारिश की। इन सभी नामों पर विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त तीन सदस्यीय स्टाफिंग समिति द्वारा विचार किया गया, जिसने रिकॉर्डों का निरीक्षण किया, हालांकि, कोई अंतिम निर्णय नहीं लिया गया था। इन परिस्थितियों में, जब मामले में देरी हो रही थी, तब अपीलकर्ता और अन्य ने वर्ष 1997 में उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर की, जिसका 5 मई, 1999 को निस्तारण कर दिया गया और राज्य सरकार को जल्द से जल्द उचित निर्णय लेने का निर्देश दिया गया। इसके बाद मामले पर विचार किया गया और अंततः बिहार विश्वविद्यालय ने 30 अगस्त, 1999/15 सितंबर, 1999 को आदेश जारी कर अपीलकर्ता सहित इन कर्मचारियों के दावों को खारिज कर दिया और उन्हें कॉलेज में काम नहीं करने का निर्देश दिया। इस कार्रवाई को रिट याचिका दायर करके चुनौती दी गई, जिसकी अनुमति दी गई और अपीलकर्ता और कुछ अन्य लोगों को रोजगार में वापस ले लिया गया। हालांकि, उन्हें नियमित कर्मचारियों का वेतन नहीं दिया गया। इसके बाद भी, मुकदमेबाजी के कुछ दौर तब हुए जब रिट याचिकाएं दायर की गईं जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा इन व्यक्तियों के दावे पर विचार करने के लिए आदेश पारित किए गए थे और उन विवरणों को देना आवश्यक नहीं है। यह कहना पर्याप्त होगा कि इस बारे में एक मुद्दा था कि क्या स्वीकृत पद थे या नहीं, जिनके खिलाफ इन व्यक्तियों के मामलों पर विचार किया जा सकता था। अपीलार्थी के अनुसार, प्रत्यर्थी नं. ८ ने दिनांक ११ जून, २००९, के पत्र द्वारा विश्वविद्यालय को सूचित किया कि कॉलेज के लिए पच्चीस पद

स्वीकृत हैं, जिनमें से पंद्रह पद ग्रेड IV कर्मचारियों के लिए और दस पद ग्रेड III कर्मचारियों के लिए थे। इसके बावजूद, कोई निर्णय नहीं लिया गया और अंततः 2010 की रिट याचिका संख्या 16667 अपीलार्थी और कुछ अन्य कर्मचारियों द्वारा दायर की गई, जिसे 1 फरवरी, 2013 को उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया। इस फैसले के खिलाफ है, प्रश्नगत एलपीए दायर किए गए थे, जिन्हें आक्षेपित फैसले द्वारा खारिज कर दिया गया है।

4. संक्षेप में, अपीलार्थी द्वारा स्थापित मामला यह है कि अपीलार्थी दो दशकों से अधिक समय से काम कर रहा है और भर्ती की उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद प्रत्यर्थी नं. 8 कॉलेज के 'अंगीभूत महाविद्यालय' का दर्जा प्राप्त करने के बाद उसकी नियुक्ति स्वीकृत पद के आलोक में थी, विश्वविद्यालय ने नियमित कर्मचारियों के वेतन का भुगतान करने से इनकार कर दिया और यद्यपि 10 मई, 1991 को एक प्रस्ताव द्वारा सेवाओं को नियमित करने का निर्णय इस आधार पर लिया गया था कि इस संबंध में राज्य सरकार द्वारा इसका लाभ अपीलार्थी को तब भी नहीं दिया जाएगा जब वह कथित संकल्प में निहित सभी शर्तों को पूरा नहीं करेगा।

5. अपीलार्थी के विद्वत वकील ने प्रस्तुत किया कि रिट न्यायालय के साथ-साथ अपील न्यायालय ने भी पूरी तरह से गलत आधार पर कार्य किया है और यह धारणा व्यक्त की है कि सरकार ने किसी भी स्तर पर अपीलार्थी और अन्य को नियमित करने के लिए सहमति व्यक्त नहीं की थी। उन्होंने कहा कि राज्य सरकार पहले ही इस तरह के नियमितीकरण के लिए सहमति दे चुकी है, लेकिन किसी न किसी कारण से इसे लागू करने में देरी कर रही है। राज्य सरकार की यह सहमति विश्वविद्यालय और कॉलेज कर्मचारी संघ के साथ 26 अप्रैल, 1989 को हुए समझौते में दर्ज की गई थी, जिसके बाद विश्वविद्यालय, राज्य सरकार और प्रतिवादी संख्या 8 के बीच विभिन्न अन्य दस्तावेजों का आदान-प्रदान किया गया था। यह भी तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय ने इस आधार पर गलत कार्यवाही की कि अपीलकर्ता की नियुक्ति 12 जुलाई, 1980 की अंतिम तिथि के बाद की गई थी, जबकि अभिलेख से पता चलता है कि उसकी नियुक्ति उससे बहुत पहले अर्थात् 24 जनवरी, 1978 को की गई थी।

6. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के विद्वत वकील ने, नीचे की अदालतों द्वारा अपनाए गए तर्क को उचित ठहराया और तर्क दिया कि अपीलार्थी का मामला स्टाफिंग पैटर्न पर पारित प्रस्ताव में शामिल नहीं था। क्योंकि जब अपीलार्थी की नियुक्ति की गई थी, न तो कोई स्वीकृत पद थे और न ही उसके बाद ऐसा कोई पद था, न ही उसे स्वीकृत पद के खिलाफ या नियत प्रक्रिया का पालन करने के बाद नियुक्त किया गया था.उसने प्रस्तुत किया कि अपीलार्थी या इसी तरह स्थित व्यक्तियों की नियुक्ति प्रत्यर्थी नं. ८ द्वारा स्वयं की गई थी और जब प्रत्यर्थी नं. ८ अंगीभूत महाविद्यालय बन गया, विश्वविद्यालय को उन व्यक्तियों को नियमित न करने का अधिकार था जो स्वीकृत पद के विरुद्ध नियुक्त नहीं किए गए थे। विद्वत वकील ने बिहार विश्वविद्यालय कानूनों की नियमावली के खंड (1) का उल्लेख किया (भाग-1)(i) जो कुलपति की नियुक्ति और शक्तियों से संबंधित है और इसके उपखंड (6) में यह निर्धारित किया गया है कि कुलपति को ही स्वीकृत ग्रेड और वेतनमान के भीतर और मंत्रालयी कर्मचारियों की स्वीकृत संख्या के भीतर इस पद पर नियुक्ति करने की शक्ति है, जिसका अर्थ है कि न केवल कुलपति को शक्ति दी गई है, बल्कि वह केवल स्वीकृत ग्रेड के भीतर ही नियुक्ति कर सकता है।

7. संबंधित तर्कों पर विचार करने के बाद, हमारा विचार है कि आक्षेपित निर्णय बिना किसी दोष के है और किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में, वह पूरा आधार जिस पर अपीलार्थी द्वारा मामला स्थापित किया गया है, गलत प्रतीत होता है। हम नोट करते हैं कि अपीलार्थी सहित इन व्यक्तियों के मामलों पर विश्वविद्यालय द्वारा विधिवत विचार किया गया था, जिस आदेश के आधार पर दिनांक १३ अगस्त, २००३, को नियमित करने से इनकार करते हुए पारित किया गया था। इस आदेश में विशेष रूप से कहा गया है कि अपीलकर्ता और अन्य की प्रारंभिक नियुक्ति कानून के अनुसार नहीं थी। यह बिना किसी विज्ञापन के किया गया था और चयन समिति द्वारा पैनल की कोई सिफारिश नहीं की गई थी। इतना ही नहीं, नियुक्तियां सक्षम प्राधिकारी द्वारा नहीं की गई थीं। हम पाते हैं कि विश्वविद्यालय या सरकार ने कॉलेजों के उन कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित करने के लिए सहमति दी थी, जो अंगीभूत महाविद्यालय में तब्दील हो गए थे, केवल इस शर्त पर कि उनकी प्रारंभिक नियुक्ति उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद की

गई थी और वह भी स्वीकृत पद के के आलोक में। प्रतिवादी के विद्वत वकील द्वारा बार में एक बयान दिया गया कि अभी भी कोई स्वीकृत पद नहीं है।

8. विनियमितीकरण से संबंधित कानून अब इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय द्वारा प्राधिकृत रूप से निर्धारित किया गया है। सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमा देवी और अन्य, (2006) 4 एस सी सी 1 उस मामले में अधिकथित कानून के लागू होने पर, यह स्पष्ट है कि कानून के विपरीत नियुक्त दिहाड़ी मजदूर के नियमितीकरण का सवाल ही नहीं उठता है। इस निर्णय को अपीलार्थी के विद्वत वकील द्वारा भी विवादित नहीं किया गया है.यही कारण है कि उसने यह अभिवचन जारी रखा कि अपीलार्थी की नियुक्ति उचित प्रक्रिया का पालन करने और कानून के अनुसार की गई थी। हालांकि, यह रिकॉर्ड से पता नहीं चलता है। प्रासंगिक रूप से, १३ अगस्त, २००३, दिनांकित आदेश, जिसके द्वारा अपीलार्थी को पूर्वोक्त आधार पर नियमितीकरण से इंकार कर दिया गया था, उस समय अपीलार्थी द्वारा भी विरोध नहीं किया गया था। उल्लेखनीय है कि उमा देवी मामले में न्यायालय ने उन लोगों के लिए एक छोटी सी खिड़की खोल दी थी, जो दस वर्षों से अधिक समय से तदर्थ/दैनिक मजदूरी के आधार पर काम कर रहे थे, उन्हें एक मुश्त उपाय के रूप में नियमित किया जा सके। हालांकि, यह भी इस शर्त के अधीन था कि उन्हें विधिवत स्वीकृत पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए। इसके अलावा, उनकी दस वर्ष की अवधि की गणना करते समय, उन मामलों को बाहर रखा गया था जहां ऐसे व्यक्ति अदालतों या न्यायाधिकरण के आदेशों की आड़ में काम करते रहे। उच्च न्यायालय ने, आक्षेपित निर्णय में, इन बारीकियों पर चर्चा की है और उमा देवी के निर्णय का भी उल्लेख किया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि उस मामले में सुझाए गए एकमुश्त उपाय का लाभ निम्नलिखित कारणों से अपीलार्थी को नहीं दिया जा सकता हैः

> “अपीलकर्ता स्पष्ट रूप से उमादेवी (पूर्वोक्त) के पैराग्राफ-53 में देखे गए अपवाद में आते हैं क्योंकि उनके दावे उस तारीख को न्यायाधीन थे जिस तारीख को संविधान पीठ की घोषणा की गई थी। 2005 की सीडब्ल्यूजेसी संख्या 12235 को बाद में 29.08.2006 को

निपटाया गया। रोजगार में इस तरह के मुकदमे को उमादेवी के निर्देशों से बाहर रखा गया है।

अपीलकर्ताओं का दावा है कि उन्हें स्टाफिंग पैटर्न के भीतर नियमित किया गया है। हमारी राय में, यह इस मामले का केंद्र बिंदु नहीं है। महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या प्रबंध समिति द्वारा उनकी प्रारंभिक नियुक्ति खुले विज्ञापन और प्रतिस्पर्धी योग्यता चयन द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुरूप थी। एम. एल. केसरी (उपर्युक्त) की एक से अधिक न्यायपीठ द्वारा विभिन्न व्याख्याओं के कारण पूर्ण न्यायपीठ को निर्देश किया गया था। हम पहले ही १३.०८.२००३ दिनांकित नियमित करने से इनकार करने वाले आदेश पर ध्यान दे चुके हैं कि दैनिक वेतन पर अपीलकर्ताओं की नियुक्ति कानून के अनुरूप नहीं थी।

पैराग्राफ 43 में राम सेवक यादव (ऊपर) का निष्कर्ष इस प्रकार हैः

“43 (ए) उमा देवी (उपर्युक्त) दैनिक वेतन, आकस्मिक, तदर्थ और अस्थायी नियुक्तियों के नियमितीकरण पर रोक लगाती है, क्योंकि सेवा की अवधि अप्रासंगिक है

(ख) खुली प्रतिस्पर्धी चयन के बिना अनुच्छेद 14 के अधिदेश के विपरीत की गई अवैध नियुक्ति को किसी भी परिस्थिति में नियमित नहीं किया जा सकता है।

(ग) अनियमित नियुक्तियों को नियमित किया जा सकता है यदि नियुक्ति ऐसा करने के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा की गई थी, तो यह संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुसार एक खाली स्वीकृत पद पर की गई थी, जिसमें प्रतिस्पर्धी चयन द्वारा पात्र अन्य लोगों की भागीदारी के लिए

समान अवसर था और उम्मीदवार के पास पद पर नियमित नियुक्ति के लिए पात्रता योग्यता थी।

(घ) नियुक्ति केवल नियुक्त किए गए व्यक्ति का ही व्यक्तिगत पक्ष नहीं होना चाहिए और वह व्यक्ति किसी न्यायालय के आदेश के हस्तक्षेप के बिना दस वर्ष से अधिक समय तक सेवा में बना रहा हो।"

9. इस प्रकार, हमारा विचार है कि इस अपील में कोई योग्यता नहीं है, जो तदनुसार खारिज की जाती है।

बिना अर्थदंड के

(ए. के. सीकरी), न्यायमूर्ति

(अशोक भूषण), न्यायमूर्ति

नई दिल्ली

23 फरवरी, 2018

**खण्डन (डिस्क्लेमर):– स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।**